ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष २०	फाल्गुन सं० २०२८ वि० फरवरी सन् १९७२	सं० ५/२३२

❋ विनती ❋

दीन हीन शरन में आया, कीजिये आप सहाय ।
काल का भय आज मेटो, अपने चरन लगाय ।।
सिन्धु भव अति अगम दुस्तर, सूझे वार न पार ।
हो दया की दृष्टि साईं, नाव है मँझधार ।।
पतित पावन तरन तारन, यह तुम्हारा नाम ।
बाल विनती सुनो चित से, मन को दो विश्राम ।।
ज्ञान नहीं परमान नहीं, अनुमान से नहीं काम ।
शब्द का दे आसरा, प्रभु बख्श दीजे नाम ।।
नाम दान प्रदान कीजे, नाम रतन महान ।
राधा-स्वामी दया सागर, कीजे अब कल्यान ।।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी) मासिक पत्र

समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ (नियम ८ फार्म ४) के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशक का स्थान	अलीगढ़ ।
२—प्रकाशन अवधि	मासिक
३—मुद्रक का नाम	सतीशचन्द्र मीतल
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	लेखराजनगर, अलीगढ़
४—प्रकाशक का नाम	देवीचरन मीतल
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	लेखराजनगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	देवीचरन मीतल
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	लेखराजनगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज की संरक्षता में देवीचरन मीतल (उपरोक्त)

७—मैं देवीचरन मीतल यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

१—३—७२

देवीचरन मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

धन्यवाद

डा० वेंकटप्रसाद हिम्मतनगर, हैदराबाद ने १६) रुपया व लेडी डाक्टर कविराज सरस्वती अग्रवाल मेहलीगेट फगवाड़ा (पंजाब) ने २१) परमदयाल जी महाराज को 'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ दिये हैं। हम उनके आभारी हैं। मालिक से प्रार्थना है कि उनका कल्याण करे।

—देवीचरन मीतल

मानवता मन्दिर होशियारपुर
में
बैशाखी सत्संग

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी ता० १३-१४ अप्रैल को परम-दयाल फकीरचन्द जी महाराज तथा अन्य सन्त महात्मा सत्संग करायेंगे। प्रेमी जन पधार कर सत्संग का लाभ उठायें।

ग्राहकों से निवेदन

'मनुष्य बनो' का यह पांचवां अंक है मगर अभी तक बहुत से ग्राहकों का चन्दा प्राप्त नहीं हुआ है और न कोई पत्र ही मिला कि उन पर कितना शुल्क बाजिव है और कब तक भेजेंगे। इसलिये प्रेमी ग्राहकों को फिर याद दहानी की जा रही है कि वे अपना शुल्क शीघ्र भेज दें।

'मनुष्य बनो' न मिलने की शिकायत

कुछ ग्राहकों को 'मनुष्य बनो' न मिलने की शिकायत रहती है मगर हम इस वर्ष के अंक तो पूरी तरह जाँच करके भेज रहे हैं यदि डाक विभाग की गड़बढ़ी से अंक नहीं मिलते तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है हम तो यह कर सकते हैं कि पत्र आने पर दुबारा भेजदें हैं। इसलिये पहिले लिख करके डाकखाने में शिकायत अवश्य कर देनी चाहिये। फिर जो उत्तर आपको मिले उसे हमको लिख दीजिये। इससे आगे चलकर सहूलियत हो जायगी।

रक्षा (सलामती)

(ले०—महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज)

मनुष्य की रक्षा यदि किसी चीज में है तो ईश्वर के विश्वास में है। यों तो ईश्वर हर वस्तु का रक्षक है जिस तरह चतुर माली अपने बाग के एक-एक घास के तिनके को पानी दे देकर हराभरा रखता है वैसे ही ईश्वर इस जगत का पालन पोषण किया करता है। जगत उसका है वह जगत् का मालिक है और मालिक किसी समय अपने अधिकार की वस्तु से गाफिल नहीं रहता। स्वयं इसकी संभाल किया करता है मगर बात यह होती है कि बहुत कम आदमी ऐसे मिलेंगे जो इस पर विश्वास रखते हैं। यह कारण है कि वह इस विश्वास के न होने से दुखी होते हैं।

जहाँ तक ईश्वर की सृष्टि का सम्बन्ध है वहाँ तक दुख नहीं है। दुख केवल मनुष्य की अपनी सृष्टि में है। ईश्वर की सृष्टि सुन्दरता से भरी हुई है। उसका सौन्दर्य देखने और समझने के योग्य हैं। मगर मनुष्य की सृष्टि में कुरूपता है। कारण प्रगट है। ईश्वर पूर्ण है। निपुण कारीगर का काम पूर्ण होता है। मनुष्य अपूर्ण है। इसलिये इसका काम भी त्रुटि-पूर्ण होता है। जितने दोष और बुराइयां होती है वह त्रुटिपूर्ण वस्तुओं में हुआ करती है। यदि मनुष्य दृष्टि को ऊँची करके अपने मन की कल्पना को थोड़ी देर के लिये अलग करदे चाहे ईश्वर का सहारा लेकर उसके रुझान को बदलदे तो अभी जो दोष दिखाई पड़ रहे हैं क्षणमात्र में दूर हो जांय। जहाँ वह अपने मन के सीमित और त्रुटिपूर्ण जगत को छोड़कर ईश्वर के जगत के दृश्य देखने लगेगा, फिर न उसको दुख का भय रहेगा न परेशानी होगी। इसको चारों ओर शान्ति और सलामती की गोद इसके लेने के लिये खुली हुई मिलेगी। यह प्रकृति हर समय उसको प्रसन्न करने की फिक्र में लगी हुई दिखाई देगी। ईश्वर तो जैसा मैंने पहिले कहा अब भी हम को अपनी सलामती की गोद में लिये बैठा है मगर क्या किया

जाय ! मनुष्य अपने मन की कल्पित उपज से मजबूर हैं। दुखी होता है। कल्पित भयों का अपने आपको भंडार बनाता रहता है। उसकी दशा उस बच्चे के समान है जो माँ की गोद में रहकर हौवा का फर्जी नाम सुनकर काँप रहा है। इसमें किसका दोष है ? दोष इसका अपना है। मनुष्य के मन में ईर्ष्या, द्वेष और मत्सर है। किसी की भलाई नहीं देख सकता। स्वार्थ के रोग में फंसकर अपनी कल्पना से उल्टी सीधी बातें सोचता रहता है और अपने चारों ओर इस तरह आपत्ति का जाल तान लेता है जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही तागों से कैद में बंध जाता है। विस्तृत दृष्टि जाती रहती है। उच्च विचार, जो उसका उत्तराधिकार था, उड़ जाता है। और यों ही शान्ति और रक्षा को व्यर्थ जबाब दे बैठता है। बारम्बार कहा जाता है कि जो शक्ति बाप के मस्तिष्क और माँ के पेट में उसकी रखवाली करती थी वह जीवित है और बड़ी होशियारी और सावधानी से उसकी चिन्ता कर रही है। मगर यहां सुने कौन ? वह जानता है कि जो कुछ करूँगा मैं ही करूँगा। 'मैं' और 'तू' आ गया और उसने उसका जीवन भ्रष्ट कर दिया। दृष्टि को फैलाकर देखो कि यह सच है या झूँठ है।

एक तो ईश्वर के विश्वास न होने का यह कारण है। दूसरा कारण यह है कि मानव बुद्धि ने जिस तरह ईश्वर के विषय में शिक्षा दी, वह अधिकतर इस प्रकार की है कि ईश्वर से प्रेम के बदले घृणा करते हैं। इनकी समझ में ईश्वर एक अत्याचारी है जो आकाशी सिंहासन पर हर समय तलवार लिये हुये रौब-दौब के साथ बैठा हुआ कठोरता के साथ राज करता है। ईश्वर के विषय में यह विचार ठीक है या गलत है इस पर बहस नहीं हैं। सवाल तो यह है कि क्या अत्याचारी हाकिम से किसी को प्रेम हो सकता है। और क्या ऐसे व्यक्ति पर विश्वास किया जा सकता है ? अनुभव इसका उत्तर हमेशा नहीं में देगा। जब विश्वास नहीं रहा तो फिर मनुष्य के लिये रक्षा की आशा कब और कैसे हो सकती है क्योंकि सहारा न होने के कारण इसके विचार उथल-पुथल करेंगे। वह मन में दुखी और निराश होगा।

मगर धन्यवाद है कि मालिक की दया से अब ऐसा समय आ रहा है और शायद आ भी गया है कि लोग ईश्वर जीव के सम्बन्ध और सृष्टि की उत्पत्ति के मसलों को और तरह समझने लग गये हैं। यदि पहिले लोग ईश्वर को मूर्तिमान समझते थे तो अब उसको परम तत्व और जगत का आदि कारण भी मानने लग गये हैं। वेदान्त के नित्यप्रति प्रचार से धीरे-धीरे सचाई की समझ आती जा रही है।

ईश्वर सब का रक्षक है। सबको जीविका देने वाला और सबका सच्चा साथी है। इसमें थोड़ा सा भी सन्देह नहीं मगर विश्वास के साथ हमको इसके भी समझने की आवश्यकता है जिसके आधीन वह वह हमारी रक्षा, मित्रता और जीविका दाता है और प्रार्थना करने पर वह हम को हर स्थिति और हर अवसर पर शोक संघर्ष और आपत्तियों से बचाता रहता है।

सबसे पहिले हम इस बात को तुम्हारे हृदयांकित कराना चाहते है कि ईश्वर क्या है और तुम्हारा उसके साथ सम्बन्ध क्या है। फिर हम धीरे-धीरे इस कानून की व्याख्या करेंगे जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। इस खास अवसर पर हमको वेदान्त के किसी कठिन मसले की उलझन में फँसना नहीं चाहते। जो कुछ बात कहेंगे स्पष्ट, सच्ची और अत्यन्त ही सरल ढंग में, ताकि तुम बहुत सुगमता से हमारे अभिप्राय को समझ सको और तुम में ईश्वर की भक्ति और प्रेम भी पैदा हो। साधारण मन और बुद्धि वालों के लिये समझाने के लिये अच्छा ढंग दृष्टान्त है। मगर इतना ख्याल रहे कि दृष्टान्त का केवल एक पहलु लेना चाहिये अन्यथा समझने में कठिनाई होगी।

उदाहरण यह है, शास्त्र कहते हैं कि पुत्र पिता का आत्मा है जैसे वृक्ष से बीज और बीज से वृक्षों का सिलसिला पैदा होता है। दूसरे शब्दों में यों समझलो कि जितने भी जीवधारी हैं वह उसी तत्व से हैं जिस तत्व से ईश्वर है। इन अर्थों में वह इसके बाल बच्चे हैं। लड़का माँ के रक्त और माँस का लोथड़ा है। वह इसके पेट में रहता है। उस जगह माँ के

द्वारा इसका पालन होता है। वह माँ के साथ नाल के द्वारा बँधा रहता है। माँ उसकी देखरेख और संभाल करती रहती है। इसी तरह हम ईश्वर के अन्दर पैदा होते, उससे पलते हैं और उसके साथ वैसे ही बँधे रहते हैं जैसे बच्चा माँ के साथ बँधा रहता है। वह उससे अलग नहीं है। इस बात को ध्यान देकर समझलो। फिर तुमको किसी समय ईश्वर से विमुख होने का भय नहीं होगा। यदि तुमको यह समझ आगई तो फिर आगे का समझना सुगम होगा। बच्चे को इतनी पहिचान नहीं है कि वह अपने और अपनी माँ के सम्बन्ध को जाने, क्योंकि बुद्धि अभी तक उस श्रेणी तक नहीं पहुँची जो उसको इसके समझने के योग्य बनादे। फिर भी देखते हो कि वह चाहे समझे या न समझे मगर माँ से उसका पालन होता है। वह किसी और जगह से अपना भोजन नहीं पाता। बच्चा चूंकि माँ के शरीर का अंश है माँ प्राकृतिक नियम के आधीन उसका पालन करने के लिये विवश है। यह सम्भव नहीं है और न हो सकता है कि माँ बच्चे की ओर से असावधान रहे। इनमें कुछ इस प्रकार के प्राकृतिक सम्बन्ध है जो एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। इसी प्रकार हम ईश्वर की संतान हैं। यह भूलकर भी ख्याल न करो कि हम और तत्व से हैं और ईश्वर दूसरा तत्व है। समुद्र और समुद्र की बूंदें अलग नहीं हैं। सूर्य और सूर्य की किरणों में अन्तर नहीं होता। वृक्ष और वृक्ष के बीज में भेद नहीं है। जब यह दशा है तो कैसे ईश्वर हम से कैसे गाफिल और बेपरवाह हो सकता है। तुम शरीरधारी की स्थिति में अपने सम्पूर्ण अंगों की संभाल करते रहते हो। तुम संभाल करने के लिये मजबूर हो। वैसे ही ईश्वर भी हमारा पालन और संभाल करने के लिये मजबूर है। यद्यपि उसकी शान में मजबूरी का शब्द प्रयोग करना अपमान में दाखिल है मगर बात सच्ची है। चाहे जिस तरह समझो, बात में अन्तर नहीं आता। जो लोग अविवेक के जाल में नहीं फँसे होते उनको भूलकर भी इसका ख्याल नहीं आता। जिसको कुदरती क्रम के आधीन विवेक आ गया, उसके लिये कुछ भय है और वह भय केवल उनके मन की कल्पना है।

मगर किसी प्रकार समझ आगई, विवेक की दशा पैदा हो गई। ऐसा क्यों हुआ इस लेख का असली मन्वव्य नहीं है और न इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जीवन के प्राकट्य में इस मरहले का आना आवेश्यक था। इससे हानि क्या हुई। बहुत अच्छा है। इसी भेदभाव और विवेक कराने वाली बुद्धि द्वारा हम असलियत को समझ कर फिर दूसरे ढंग से ईश्वर के पल्ले को उसी तरह मजबूती के साथ पकड़ सकते हैं जैसे कृष्ण यशोदा के पल्ले से लटके हुए उससे दूध और छाछ माँगा करते थे। हम थोड़ा संभले हुए इस बुद्धि से काम लेने का ढंग सोचें तो कभी अपने अधिकार और उत्तराधिकार (मीरास) से बंचित नहीं हो सकते। ईश्वर से लड़ो झगड़ो, मगर उसका पल्ला न छोड़ो। ऐ ईश्वर तू मेरी माता है। मैं तुझको मारूँगा। तेरे हाथ से तमाचा खाऊँगा। रोऊँगा तुझको रुलाऊँगा। योग्य हूँ या अयोग्य तेरा पल्ला न छोड़ूँगा। तेरी गोद मेरे रहने का स्थान है। मैं तुझसे हूं। तुझको छोड़कर कहाँ जाऊँ या जा सकता हूँ। देखूं तो सही तू मुझको कहाँ और कब और कैसे छोड़ सकता है।

दामन न छोड़ूँगा तेरा, जब तक है दम में दम।
रहना है मुझको शोख, तेरा साया बन के साथ॥

यह नटखट बच्चे की बातें हैं मगर इस वार्तालाप में प्रेम है सचाई है। तुम भी ईश्वर के साथ इस तरह मचलते हुए सादगी से बर्ताव कर सकते हो। सादा स्वभाव बच्चों की नटखटी और गुस्ताखी हमेशा क्षमा की जाती है, क्योंकि इनके हृदय में प्रेम रहता है। ईश्वर यद्यपि गुणातीत कहा जाता है मगर वह भी इस प्रेम का और इस सरल स्वभाव वाले विश्वास का भूका है। वह कहता है तुम हजार पाप करो। प्रेम से रहित न बनो। मैं तुम्हारे वैसे ही आधीन हूँ जैसे साधु रोटी के आश्रित होता हैं।

क्रमशः

प्रवचन

परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मंदिर होशियारपुर १५-७-७१)

होय है किस नाम बिना निस्तारा ।
देवी देवा भूतलत पूजा, आतम नाम बिसारा ।।
वैश्या के पुत्र पितु कौनसे कहिहै, ऐसो ही संसारा ।
कंचन मेरु सुमेरु लों द्रव्य, दीजै दान अपारा ।।
जो जस देय सो तैसे पावे, मुक्ति भेद है न्यारा ।
नाम है नवका या जग माहीं, जा चढ़ उतरो पारा ।।
ज्ञान की कड़िया सतगुरु करले, खेय लगादें पारा ।
सतगुरु चीन्हि चरन चित लाओ, उतरो भव जल पारा ।।
नाम बराबर और न दूजा, कहे कबीर पुकारा ।

दाता दयाल महर्षि शिव ब्रत लाल जी महाराज का अहसान है कि उनकी दया से और आप सत्संगियों की दया से मुझे उस असली और सच्चे नाम का पता लग गया ।

सतगुरु चीन्हि चरन चित लावो, उतरो भवजल पारा" 'चीन्हि' का अर्थ है जानना और पहिचानना । आज यह जोतिषी साहब और दूसरे लोग नाम लेने के लिये आये हुये हैं । मैं ने तो यह नाम तुम लोगों से लिया है । मेरे पास क्या रक्खा है । हां मेरे पास से तुम लोगों को 'सतगुरु चीन्ह' मिल सकती है मैं तुम को सत्गुरु का रूप बता सकता हूं । वह भी कब ? जब तुम लोगों की आंख खुली हुई हो मगर आंख उसकी खुलती है जिसमें ठहराव की शक्ति है । जोतिषी साहब ! आप का तो आसन ही दृढ नहीं है । सबसे पहिले आसन की दृढ़ता की आवश्यकता है ।

फिर मन की दृढ़ता की आवश्यकता है। फिर आत्मा की दृढ़ता की आवश्यकता है। दृढ़ता का अर्थ ठहराव है। जो सत्संग में हर समय आसन बदलता रहता है वह कभी भी सतगुरु को नहीं चीन्ह सकता। जिसका आसन भी दृढ़ होगया मगर उसके मन में तरह २ के संकल्प विकल्प उठते रहते हैं वह भी इस नाम को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये नाम की प्राप्ति दसवें द्वार से आगे होती है।

जोतिषी जी ने मुझे कल एक पुस्तक दिखाई। यह उस पुस्तक पर चलते हैं। उसमें (१) Evil Spirits (२) Non-vegetarian Spirits (३) Non-Vegetarian electrified Spirits का वर्णन है। मैंने उनसे कहा था कि नाम प्राप्त करने के लिये पहिले दृढ़ आसन को आवश्यकता है। फिर जब तक मन की असलियत का पता नहीं लगता, नाम की प्राप्ति नहीं होती।

होय है किस नाम बिना निस्तारा ॥

मैं किसी संत के साथ यों ही हां में हां मिलाने को तैयार नहीं हूँ। मैं भी कहता हूं कि नाम के बिना निस्तारा नहीं हैं मगर यह समाप्त कब होगा ?

देवी देवा भूतल पूजा, आतम नाम बिसारा।

कबीर साहब कहते हैं कि देवी देवता, भूत प्रेतों और आत्मा की भक्ति करने वाला इस नाम को प्राप्त नहीं कर सकता और भव जाल से नहीं निकल सकता। मेरे अन्दर सनातन धर्म के संस्कार हैं। क्या कोई हिन्दू जिसके दिमाग पर सनातन धर्म के संस्कार बिना गुरु के पड़े हुये हैं इस बात पर विश्वास लायेगा ? भूतप्रेत और देवी देवताओं को तो वह मान जायेगा मगर वह कहते हैं कि आत्म आनन्द लेने वाला भी भवसागर से पार नहीं जासकता।

जोतिषी जी ने कल मुझे अपनी अंग्रेजी की पुस्तक के आधार पर कहा कि मुर्दा रूहें आती हैं और मुर्दा रूहों से बातें होती हैं। होती होंगी मैं खंडन नहीं करता। यदि इन पुस्तक के लेखकों को

रूहों (Spirits) में फंसाने का हक है तो जिस ढंग से मैं इन रूहों से निकला हूँ उस के वर्णन करने का मुझे भी अधिकार है। लोग कहते हैं कि बाहर से कोई रूह आती है और बातें करती है और दर्शन देती है। आप के सामने यह ला० ज्ञान चन्द जालंधर निवासी बैठे हुये हैं। यह कहते हैं कि मैं वैष्णव देवी की यात्रा को जारहा था। पहाड़ी क्षेत्र था। मेरे दिल में कोई बुरा ख्याल उठा। मैं उसे रोकना चाहता था मगर वह रुकता नहीं था। देवी को मनाया। ख्याल नहीं रुका। हनुमान जी को मनाया मगर वह विचार बना रहा। तो बाबा जी आप आगये। आप का रूप प्रगट हुआ। फिर वह विचार चला गया।

अभी २ यह स्त्री जो सामने बैठी हुई है, इसने बताया कि मेरी लड़की बीमार थी। आपने मुझसे स्वप्न में आज रात को कहा कि तुम रामायण का पाठ करो। तुम्हारी लड़की ठीक हो जायेगी। अब यह स्त्री कहती है कि मैंने स्वप्न में ही पाठ किया। जब सुबह उठी तो देखा कि लड़की ठीक थी।

ऐ संसार वालो ! मैं सच कहता हूँ कि मुझे ला०ज्ञान चन्द की घटना का कोई पता नहीं है और न इस स्त्री की लड़की के बीमार होने का पता है। मैं न कहीं गया और न जाता हूँ। मैं कैसे मानूं कि बाहर से कोई रूह आकर दर्शन देती है।

कोई कहता है कि मैंने पर्चे हल कराये। कोई कहता है आपने मुझे नदी में डूबते हुये को बचाया। कोई कुछ बताता है और कोई कुछ कहता है। जब मैं संत सत्गुरु वक्त जिन्दा बैठा हुआ शपथ पूर्वक कहता हूं कि मैं कहीं नहीं जाता और न मुझे कोई जानकारी होती है तो मैं कैसे मानलूं कि बाहर से कोई रूह किसी के अन्दर आती है। तुम सवाल करोगे कि क्या यह पुस्तक लेखक झूंठ बोलते हैं। यह झूठे नहीं हैं। श्री यादराम टप्पल वाले को जमुना की रेती में साक्षात् मेरे दर्शन हुये थे। वह सत्संग में कहने लगा कि बाबा

जी आप सच कहते हैं तो क्या मैं झूठ बोलता हूं। श्री यादराम भी झूठे नहीं हैं। वह इसलिये सच्चे हैं कि उन्होंने सतगुरु को चीन्हा नहीं है। मैं इसलिये सच्चा हूँ कि मैंने सतगुरु को चीन्हा है। जोतिषी साहब ! आप मेरे सत्संग के अधिकारी नहीं हैं मगर तुमको यह संस्कार दिये जाता हूँ। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों या इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में तुम्हारे काम आयेगा।

अब प्रश्न होता है कि यह भूत प्रेत हैं भी या नहीं। अनुभव कहता है कि हैं। कैसे ? इस सृष्टि की रचना में कोई जीव पांच तत्व से बनते हैं। कोई चार तत्व से। उनमें पृथ्वी तत्व नहीं है। कोई जीव तीन तत्व से बनते हैं। अब यह कहते कि चन्द्रमा में जीवन नहीं है। मैंने भी अपनी पुस्तक 'आकाशीय रचना' में लिखा है कि वहाँ जीवन नहीं है। और मनुष्य के लिये वहां जाना और वहां जीवित रहना बहुत कठिन है मगर मुझे यह तो पता नहीं था कि मनुष्य वहां आक्सीजन साथ ले जायगा। जो आदमी वहां गये वह आक्सीजन लेकर गये। तब वहां जीवित रहे। मगर चन्द्रमा में जिन्दगी है और वह जीवन शरीर रहित है। वहाँ मानसिक जीवन अर्थात सूक्ष्म प्रकृति का जीवन है जिसको वर्तमान साइंस अभी तक समझ नहीं सकी। चन्द्रमा चूंकि पृथ्वी के अधिक निकट है इसलिये इसकी किरणों का भी इस मृत्युलोक में अधिक प्रभाव पड़ता है। यह जो प्रभाव है किसी जीवित वस्तु का ही तो पड़ेगा। शक्ति का ही दूसरा नाम जीवन है यद्यपि इस शक्ति के रूप अलग अलग हो सकते हैं।

यदि सूर्य लोक में जीवन नहीं है तो वह जो किरण वहाँ से आकर बनस्पति पर पड़ती है उसमें जीवन आजाता है। वह कहां से आता है ? चूंकि किरण में जीवन है इसलिये सूर्य में भी जीवन है। उसमें एक आकाश तत्व और एक अग्नि तत्व अर्थात दो तत्व का जीवन है।

Space(स्थान) वैज्ञानिक कहते हैं कि ऊपर वायु नहीं है। वहां

Weightlessness (भारनहीं) है। जब वहां स्थूल प्रकृति नहीं है तो भार कहाँ से आयेगा !

इस प्रकार की रूहें इस संसार में हैं मगर वह तुम्हारे अन्तर नहीं आतीं। जो रूहें किसी समय यहाँ रह गई हैं उनके अन्तर से जो रेडीयेशन निकली हुई है वह इस ब्रह्माण्ड में मौजूद है। उनकी आवाजें और विचार इस ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं। वह रूहें यहां नहीं आतीं किन्तु उन रूहों की विचार धारायें और उनके कर्म जो इस ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं, वह आते हैं। कब ? जब मनुष्य अपने अन्तर जाता है तो भ्रू मध्य से लेकर मस्तक तक के रास्ते में, जो पांच तत्वों से बना है, जब मनुष्य की सुरत वहां जाती है तो चुम्बक के नियम के अनुसार जैसे रेडियो व टैलीविजन से आवाजें आती हैं तो पिछले विचार जो ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं वह मनुष्य के दिमाग पर प्रभाव डालते हैं। जब तक कोई आदमी अपने आपको इतना ऊँचा न ले जाय अर्थात् मन के मंडल से परे न चला जाय उस पर उसकी प्रकृति के अनुसार मुर्दा आदमियों के या जीवित लोगों के जो भाव व विचार इस ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं उसका प्रतिबिम्ब उस आदमी के दिमाग पर पड़ता रहेगा और वह आदमी अपने अज्ञान वश उस प्रतिबिम्ब को भूत प्रेत आदि समझता रहेगा। यह है मेरा अनुभव। दावा किसी बात का नहीं है।

मेरी रिसर्च चूंकि कबीर साहब की रिसर्च से मेल खाती हैं इसलिये उनकी बाणी को सत्य मानता हूँ। मैं अन्धविश्वासी नहीं हूँ। अन्ध विश्वास मेरा यह है कि मैं केवल एक को मानता हूँ जो मेरा आधार है। मैंने कभी उसको राम के रूप में माना, कभी कृष्ण के रूप में, कभी दातादयाल के रूप में और अब शब्द और प्रकाश के रूप में मानता हूँ यद्यपि वह इससे भी परे है।

साइंस सिद्ध करती है कि पदार्थ का कभी नाश नहीं होता (Matter is never Destroyed) किन्तु अपना रूप बदलता

रहता है जिस तरह आकाश बदल कर अग्नि हो जाता है और अग्नि बदल कर वायु हो जाती है। वायु बदल कर जल बन जाता है और जल पृथ्वी बन जाता है। फिर पृथ्वी बदल कर जल और जल हवा का रूप हो जाता है। वायु अग्नि और अग्नि आकाश के रूप में बदल जाती है।

चूंकि पदार्थ नष्ट नहीं होता और आज दिन तक जितने भी रूह वाले यहां आये हैं और वह पदार्थ यहां मौजूद है तो जब कभी कोई मनुष्य इन श्रेणियों में जाता है तो उसके दिमाग पर वह विचार प्रभाव करते हैं जो उनके लिये उपयुक्त हैं। जिस आदमी का दिमाग शक्तिशाली है उसके दिमाग पर कोई भूत प्रेत नहीं आता। इसका प्रमाण यह है कि लोग कहते हैं कि मैं उनके अन्तर प्रगट होकर उनके कई प्रकार के काम करता हूँ मगर मैं तो नहीं जाता। तो वह कौन जाता है ? रेडीयेशन जाता है। आवश्यक नहीं कि मेरी रेडीयेशन जाय और भी सब महात्माओं या दूसरे आदमियों की रेडीयेशन यहाँ मौजूद है। चुम्बक शक्ति के नियम के अनुसार उसका प्रभाव होता है। वह विचार लोगों के अन्तर जाते है और यह समझते हैं कि बाहर से कोई भूत उनके अन्तर आगया है।

होय है किस नाम बिना निस्तारा।
देवी देवा भूतल पूजा, आतम नाम बिसारा ॥

असली और सच्चे नाम को पकड़ो मगर इस नाम को तुम तब पकड़ सकोगे जब तुमको कोई गुरु मिल जायगा और वह तुमको सच्चा भेद और ज्ञान देगा। इस भेद के मिलने के बाद जितने रूप रंग और विचार तुम्हारे सामने आयेंगे तुम उनको सत नहीं मानोगे उनमें फँसोगे नहीं। जब तक तुम इन पांच तत्वों के शरीर में रहोगे तुम उस नाम को पकड़ नहीं सकते। मैं पकड़ नहीं सकता था।

दाता दयालजी ने मुझे इस ढंग से स्पष्ट शब्दों में नहीं समझाया

जैसे मैं आप लोगों को समझाता हूँ। इस तरह समझाने से मंडल या दायरे नहीं बनते दूसरी बात यह भी है कि जीव अधिकारी नहीं थे।

भारतवर्ष में ऐसा कोई सन्त या महात्मा नहीं हुआ जिसने सच्चे रहस्य को आम पबलिक में खोला हो। स्वामी जी और कबीर साहब परम सन्त थे। उन्होंने इस रहस्य को नहीं खोला। कबीर साहब ने स्पष्ट शब्दों में धर्मदास का मुँह बन्द कर दिया—

धर्मदास तोहि लाख दुहाई। सार भेद बाहर नहिं जाई ॥

यह बात उन्होंने जीवों के कल्याण के लिये कही या यह समझकर कही कि जीवों में इस बात के समझने की शक्ति नहीं है या यह कि डेरे नहीं बनेंगे। स्वामीजी महाराज डेरा बनाना नहीं चाहते थे लेकिन हुजूर राय सालिगराम साहब ने उनसे बड़ी प्रार्थना की। उनकी सेवा से प्रभावित होकर बसन्त सन् १८६१ ई० में सत्संग का सिलसिला चालू किया गया मगर साथ ही यह भी कह गये—

सन्त बिना कोई भेद न जाने, वह तोहिं कहें अलग में।

अब यह राधास्वामी मत एक मजहब का रूप धारण कर रहा है। पंथ बन गया है। गद्दियां बन गई हैं।

सतगुरु चीन्ह चरन चित लाओ, उतरो भव जल पारा ॥

जोतिषी साहब ! कल आपने मुझे एक पुस्तक दिखाई थी। जिन्होंने यह पुस्तक लिखी है यह उनकी बुद्धि की कांट छांट है। तुम मेरे पास नाम लेने के लिये आये हो। जब तक तुम्हारे दिमाग से जो पहिले प्रभाव और प्रतिबिम्ब हैं यह साफ नहीं होंगे तब तक तुम नाम के अधिकारी नहीं बन सकते। इसलिये सत्संग की महिमा है। सत्संग में मनुष्य के संशयों और पहिले संस्कारों को धोया जाता है। इसलिये राधास्वामी मत में आदेश है कि यदि तुम अपने आदि घर वापिस जाना चाहते हो तो किसी पूर्ण सन्त की संगत करो। उसको नाम देने के लिये विवश न करो और सत्सँग करते रहो। जब वह तमको नाम का अधिकारी समझेंगे तो तुमको नाम की दीक्षा

दे देंगे। तुम्हारा मन नाम के लिये बहुत इच्छुक है तो उनसे पुकार कर देखो। यदि उचित समझेंगे तो नाम देदेंगे।

तुमको घई साहब (कानपुर वालों) ने मेरे पास भेजा है। मेरे सिर पर जिम्मेदारी है। मैं ऊट पटांग ढंग से दुनिया को चेला नहीं बनाता। पहिले जीवों की बुद्धि को स्वच्छ करने की कोशिश करता हूँ। जब तक तुम्हारा यह भ्रम दूर नहीं होता कि बाहर से कोई आता है तब तक तुम इस मार्ग पर चलने के योग्य नहीं हो।

तुम देखो मैं यहां मानवता मन्दिर में रहता हूँ। और तुम लोग भी यहां आते हो। सबके बिचार पवित्र तो होते नहीं। यदि मेरी रेडीयेशन यहाँ रहती है तो तुम लोगों की रेडीयेशन भी तो यहाँ रहती है मगर लोग कहते हैं कि मानवता मन्दिर में हमको शान्ति मिलती है।

प्राचीनकाल में जहाँ ऋषि लोग तपस्या करते थे वहां उनकी रेडीयेशन के कारण वह जानवर जो एक दूसरे के शत्रु हैं वह भी आपस में मेल मिलाप से रहा करते थे। मैं कंडियां रेलवे स्टेशन पर अ० स्टेशन मास्टर था। वहां रैस्टोरेन्ट के खानसामा ने बिल्लियाँ और कबूतर पाल रक्खे थे। बिल्लिया कबूतरों के साथ खेलती थीं और कबूतर बिल्लियों के ऊपर बैठे रहते थे। मैं स्वयं उनको देखा है। ऐसा क्यों था ? क्योंकि बिल्लियाँ और कबूतरों के दिल में यह भाव था कि हम दोनों ही खानसामा अर्थात् एक मालिक के हैं। और खानसामा के दिल में भी यह ख्याल था कि यह दोनों ही मेरे हैं, इसलिये बिल्लियाँ कबूतरों को हानि नहीं करती थीं।

अब सोचिये कि किसी व्यक्ति का इष्ट तो देवी है, किसी का इष्ट कोई और देवता है, कोई बाबा सावनसिंह को इष्ट मानता है कोई फकीरचन्द को इष्ट मानता है। चूंकि इनमें एकता नहीं है इसलिये इनमें परस्पर प्रेम का होना असम्भव है। मनुष्य का आइडियल (आदर्श) वह होना चाहिये जो सब से ऊँचा अर्थात्

मालिके कुल हो। इसीलिये सत्संग कराया जाता है।

वैश्या के पुत्र पितु कौन से कहि है, ऐसा ही ससारा।

क्या किसी वैश्या के लड़के के बाप का नाम कोई बता सकता है ? जब तक हम भारतवासी एक मालिक कुल को मानने वाले नहीं होंगे हमारा आपस का प्रेम होना महा कठिन है। आपत्ति के समय अपने स्वार्थ के लिये होजांय तो होजांय। जैसे अब पूर्वी बंगाल की दशा है। सन् १९४७ से पहिले या १९४७ में हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के घोर शत्रु थे और एक दूसरे का सिर काट देते थे। महात्मा गांधी भी नौआखाली में समझाने गये थे। लेकिन अब क्या है ? लाखों हिन्दू और मुसलमान जो पूर्वी पाकिस्तान से भारत में आये हैं वह कैम्पों में इकठ्ठे इस तरह रहते हैं जैसे एक ही मां के बच्चे हैं। ऐसा क्यों है ? आपत्ति आई हुई है। कुदरत बड़ी दयालु है। हमको सचाई की ओर ले जाने के लिये हम पर इस संसार में सामाजिकरूप से, व्यक्तिगतरूप से और पोलिटीकल रूप से दुख और कष्ट आते हैं।

दुख दारू सुख रोग भया।

तुम गृहस्थी हो। कौन है जिस पर आपत्ति नहीं आती। जिस पर आपत्ति आती हैं वह धन्य है। उसके जीवन का सुधार होता है।

जोतिषी साहब ! आपको सत्संग करा रहा हूँ। मैं आपको एक संस्कार दिये जारहा हूं। शायद मेरे वह वचन तुम्हारे दिमाग में बैठ जांय और तुम्हारे अन्तर अपने असली घर जाने का भाव पैदा हो जाय। यह जो मेरे बचन हैं यह तुम्हारी सहायता करेंगे न कि फकीरचन्द तुम्हारी सहायता करेगा। मैंने गुरु बन कर संसार को धोखा नहीं दिया। गुरुयायी की मगर गुरुपने का पाप अपने सिर पर नहीं लिया।

कंचन मेरु सुमेरु हों दरिया, दीजे दान अपारा।
जो जस दे सो तैसे पावे, मुक्ति भेद है न्यारा ॥

तुम दान करो। जप तप यज्ञादि जो कुछ तुम करोगे वह तुमको मिलेगा। नेकी करोगे नेकी मिलेगी। बुराई करोगे बुराई मिलेगी। सेवा करोगे तुमको सेवा मिलेगी मगर अपने आदि घर जाने का जो भेद है वह बिल्कुल न्यारा है। सहसदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न महासुन्न और भँवर गुफा के संस्कार जो तुम्हारे मन पर पड़ेंगे उनसे तुम्हारे अन्तर प्रेम बढ़ेगा लेकिन जब तक तुम इनसे ऊपर नहीं जाओगे तुम अपने आदि घर नहीं जा सकते। मैं नहीं जा सकता था। तब ही तो कहता हूँ कि ऐ दाता ! आपका बड़ा अहसान है। यद्यपि मैं अभी तक गिरता रहता हूँ मगर जाग्रत और अभ्यास में नहीं गिरता। हाँ रात को नींद के समय स्वप्न में मेरे सामने दृश्य आते रहते हैं। Evil Spirits (भूत प्रेत) क्या हैं ? यह वह संस्कार है जो पहिले ही से मेरे दिमाग पर पड़े हुये हैं। जब स्वप्न के समय सुरत वहां जाती है तो वही रूप मेरे सामने आते हैं। इस-लिये जोतिषी साहब ! यदि आपके पास घई साहब की चिट्ठी न होती तो तुम्हारी प्रकृति को देख कर तुम्हारे साथ बात न करता। मैं कपटी नहीं हूँ। घई साहब मेरे साथ प्रेम करते हैं और मानवता मन्दिर की काफी सेवा करते हैं। यह कालीन सब उनके ही भेजे हुये हैं। चूंकि उनका यह अहसान है इसलिये उनकी बात मानना मेरे लिये आवश्यक है। इसलिये आपको सत्संग करा दिये। अब यदि अपने घर जाना चाहो तो अपने अन्तर केवल शब्द गुरु को पकड़ो मगर इससे पहिले तुमको क्या करना होगा, सुनो—

नाम ही नवका या जग माहीं, जा चढ़ उतरो पारा ।।

यदि तुम पार जाना चाहते हो तो इन सब रूप रंग, भाव विचारों से सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा। यदि फकीरचन्द का रूप प्रगट होगया तो तुम जीवन भर उसकी दाड़ी मूँछ में ही लगे रहोगे और पार नहीं जा सकोगे क्योंकि तुमने सतगुरु को चीन्हा नहीं है। तुम तो गुरु को दाड़ी मूंछ वाला या पगड़ी वाला समझते हो। इस रूप

ने तुमको गुरु का रूप बताना है कि गुरु नाम है ज्ञान का, समझ का और सच्चे विवेक का।

ज्ञान की कड़ियाँ सतगुरु करले, खेय लगावें पारा ॥

ज्ञान को सतगुरु करले। मैं दुनियां को फकीरचन्द के पीछे नहीं लगाना चाहता। यह जितने महात्मा हुये हैं अपना नाम और गद्दियां छोड़ गये। दुनियां के लिये जो कुछ किया वह किया मगर अपने लिये बुरा किया। ज्ञान तब मिलेगा जब किसी आप्त पुरुष या किसी सत्पुरुष की शरण जाओगे। इसलिये राधास्वामी मत में आदेश है कि किसी जिन्दा पूर्ण गुरु की खोज करो। जो आदमी दूर बैठे हुए भी मेरा ध्यान करते हैं उनमें भी सिद्धि शक्ति आजायेगी। मैंने देखा कि पिछले सन्तों ने इस रहस्य को नहीं खोला। इसलिये मैं ऐसा काम कर चला हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जिन्दा पूर्ण पुरुष को न मिल सके और यदि वह अधिकारी है और मेरे बचनों और मेरे सत्संगों से जो पुस्तक रूप में पढ़ कर सच्ची समझ प्राप्त कर लेता है तो फिर उसको जीवित गुरु की खोज करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो कुछ जीवित गुरु ने बताना है मैंने उस पर्दे को खोल दिया है। मगर फिर भी उसका अहंकार नहीं जायगा। सिर झुकाने के लिये कोई जगह चाहिये। दीपक दीपक से जलता है। इसलिये जिन्दा गुरु अपने अहंकार को तोड़ने के लिये है। यदि किसी ने मेरे सत्संग से मेरी बात को समझलिया और उत्तम अधिकारी है तो शायद उसको जाना न पड़े मगर फिर भी 'मैं पना' मिटाने के लिये कोई जगह चाहिये। ज्ञान रूपी सतगुरु तुमको भवसार से पार लगा सकता है। जिस ज्ञान से मुझे समझ आई वह बताता हूँ।

जब से सत्संगियों की बदौलत मुझे यह निश्चय हो गया कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता तो इस ज्ञान से मैं आगे जाने के लिये विवश होगया। दुनिया इस ज्ञान की अधिकारी नहीं। यही कारण

है कि मैं दुनियाँ को नाम नहीं देता। सत्संग अवश्य कराता रहता हूँ।

सतगुरु चीन्ह चरन चित लाओ, उतरो भवजल पारा।

सतगुरु को पहिचानो। क्यों? सतगुरु नाम है सच्चे ज्ञान का, सच्ची समझ का। यह कोई पूर्ण पुरुष ही देता है। मगर तुम लोग तो शरीर को ही गुरु मानते हो। कोई फकीरचन्द को, कोई दाता दयाल को, कोई बाबा सावनसिंहजी को और कोई गुरु नानक को गुरु मानता है। कबीर साहब जो आदि सन्त हुये हैं कहते हैं:—

सतगुरु चीन्हों रे भाई ।।
सत्त नाम बिन सब नर बूढ़े, नरक पड़ी चतुराई ।।
वेद पुराण भागवत गीता, इनको सबै दृढावें ।
जाको जनम सुफल रे प्रानी, सो पूरा गुरु पावें ।।

अरे तुम तो गीता भागवत को पढ़ते रहते हो। कोई राधास्वामी मत की बाणी को पढ़ता रहता है। कोई गुरु ग्रंथ साहब का पाठ करता है। केवल पाठ करने से गुरु नहीं मिलता।

बहुत गुरु संसार कहावें, मंत्र देत हैं काना।
उपजै बिनसें या भव सागर, मरम न काहू जाना ।।

इस भेद का किसी को पता नहीं लगता। बहुत से लोग गुरु कहाते हैं और नाम देते फिरते हैं मगर किसी को भेद नहीं मिलता।

सतगुरु एक जगत में गुरु है, सो भव से कढ़िहारा।
कहे कबीर जगत के गुरुआ, मर मर लें अवतारा ।।

एक डाक्टर के पास रोग का सफल इलाज है। हो सकता है वह स्वयं उस रोग में ग्रसित हो या हो जाय मगर जो नुसखा वह तुमको बताता है उससे तुमको पूरा लाभ हो जाता है इसलिये यह मत देखो कि हुजूर बाबा सावनसिंह या फकीरचन्द पहुँचे हुये हैं या कि नहीं। जो कुछ गुरु कहता है उस पर अमल करो। तब तुम्हारा बेड़ा पार होगा।

हर एक सत्संगी अपने गुरु को अच्छा और दूसरे गुरुओं में कोई न कोई ऐब बताता है। व्यास के बहुत से सत्संगी यह कहते हैं कि जो कुछ हैं वह बाबा चरनसिंह है। शेष सब काल मत में है। ऐसे ही आगरे के सत्संगी तथा दूसरे स्थानों के सत्संगी कहते हैं।

यह सब अधूरे हैं और अज्ञानी हैं। इनको मजहब या पंथ का पता नहीं है। हर एक मनुष्य में कोई न कोई अवगुण होता है। अवगुणों से रहित तो केवल एक मालिक का स्वरूप है। क्या मैं अवगुणों से रहित हूँ। मैं स्वयं अपने दोष अपने सत्संगों में कहता रहता हूँ। इसलिये किसी गुरु में ऐब मत देखो किन्तु उसके बचनों पर अमल करके अपना काम बनाओ।

बाणी गुरु, गुरु है बाणी, बाणी अमृत सारे ॥
डाक्टर के नुसखे पर चलो ताकि तुम स्वस्थ हो जाओ।
सतगुरु चीन्ह चरन चित लाओ, उतरो भव जल पारा।
नाम बराबर और न दूजा, कहे कबीर पुकारा ॥

जो कुछ कबीर ने कहा वह मेरा अनुभव है मगर तुम लोग वहाँ नहीं पहुँच सकते। गृहस्थियों को चाहिये कि अच्छे संस्कार लें। अपना जीवन अच्छा बनाने के लिये अच्छे ख्यालात लो। यही वेद मार्ग है— शिव संकल्प मस्तु'। चाहे देवी को मानो चाहे हनुमान, राम, श्री कृष्ण को मानो। इनके जीवन के शुभ कर्मों ही से तुमको अच्छे संस्कार मिलेंगे और तुम्हारा जीवन Evil spiri में (भूत-योनि) में नहीं जायगा।

रह गया भवसागर से पार होना, यह तो शब्द प्रकाश के बिना नहीं हो सकता। यही गरुड़ पुराण कहता है कि यदि भवसागर से पार जाना चाहते हो तो पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म से आगे जाओ। बस !

———

प्रवचन

परमसत दयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मन्दिर होशियारपुर ४—११—७१)

आस कर गुरु की दया की, हो निरास न तू कभी ।
जो निरास हुआ समझले, गुरु का दास न तू कभी ॥
जग के फंदों में पड़ा, समझा नहीं उपदेश को ।
तज के पृथ्वी को चढ़ा, प्यारे अकाश न तू कभी ॥
माया छाया एक है, दोनों में सार की गम कहाँ ।
यह समझ आ जाय, होगा फिर निरास न तू कभी ॥
कैसे अपने रूप की, आती समझ प्यारे तुझे ।
आया वर्ष में पक्ष मास में, गुरु के पास न तू कभी ॥
नाम से मिटते हैं संकट, नाम गुरु का मंत्र है ।
नाम से काटा है माया जाल, फांस न तू कभी ।
अब संभल जा नाम में, विसराम आठों याम ले ।
किया राधास्वामी नाम से, दुख का नाश न तू कभी ॥

यह शब्द मेरी ही शान्ति के लिये निकलते हैं। मैं साधारणतया चौथे पद में रहता हूँ। चौथा पद क्या है ? जहां न रूप है न रग है न रेखा है। मेरे बचपन के संस्कार अर्थात् दातादयाल से प्रेम, सुमिरन ध्यान में दृढ़ता यह अभी तक मौजूद हैं। आज अभ्यास में निचली श्रेणी में बैठकर प्रकाश में गुरु मूर्ति बनाकर प्रेम करना चाहता था मगर चूँकि मुझे यह ज्ञान हो चुका है कि यह सब माया है इसलिये अब वहां मेरी सुरत नहीं ठहरती थी। फिर इस दुनियां को भूलकर कि यह सब माया है मैं ऊपर चला गया। ख्याल आया कि फकीर ! वह जो तेरा छोटी आयु का ख्याल था सुमिरन करना, ध्यान लगाना, रूप का स्थित हो जाना, बातें करना और प्रश्नोत्तर करना वह समाप्त हो गया। इससे मेरे मन में एक प्रकार

की कमजोरी आ गई। पहिले कोई विचार यदि आता कि ऐसा होगा या नहीं तो मैं आपसे पूछ लेता था। अब चूंकि गुरु के रूप का ऊँचे से ऊँचा मुझे पता लग गया है इसलिये अब मैं पूछता नहीं किन्तु स्वाभाविक ही मेरे मुँह से जो निकलता है वह दूसरों को बता देता हूँ। आजकल मेरी ऐसी दशा होगई है। आज साधन में परिपक्वता न आई तो कुछ उदासी आगई और इस शब्द ने मुझे शान्ति दी।

आस कर गुरु की दया की, हो निरास न तू कभी ॥

अब किस गुरु की दया की आस करूँ ? वह जो पहिले गुरु स्वरूप था उसकी दया की आस तो सतसंगियों के अनुभवों के कारण जाती रही। अब सत्संगियों से मालुम हुआ कि मेरा रूप उनके अन्तर प्रगट होकर उनसे बातें करता है और उनकी सहायता करता है और मैं नहीं होता तो यह मेरा विचार जाता रहा। इसलिये अब नीचे साधन नहीं होता।

मैं ऐसा क्यों कहता हूँ ? अभी एक हरबंशसिंह नामी सत्संगी आया। कुछ वर्ष पहिले वह बहुत निर्धन था। मेरे पास आया करता था। वह दुखी था। मैंने उससे कहा कि कलकत्ता चले जाओ। वहां तुमको काम मिल जायगा। उसका मुझ पर विश्वास था। वह कलकत्ता चला गया। अब उसको वहां पांच छः सौ रुपये माहवार वेतन मिल रहा है। उसके लड़का नहीं था। लड़कां भी हो गया। लड़कियां भी हैं। पहिले अपना घर नहीं था। घर भी बना लिया है। अब कलकत्ता से आया हुआ था। आज छुट्टी समाप्त होने वाली थी। वापिस जा रहा था। मेरे पांव पर सिर रखकर रोने लग गया। मेरे हृदय में एक चोट लगी और अपना जीवन याद आया कि दातादयाल के साथ ऐसा ही प्रेम किया करता था। यह सत्संगी तो धन दौलत और पुत्र आदि माँगते हैं और मैं अपने असली आदि घर और सच्चे मालिक की लालसा लेकर उनके पास जाया करता था। और प्रेम भाव में आकर दाता को मालिक मानकर आनन्द लिया करता था।

चूंकि मैंने इस हरवंशसिंह के लिये कुछ नहीं किया, इसको जो कुछ मिला वह इसके अपने ही विश्वास और श्रद्धा का फल मिला इसलिये ऐसे अनुभवों के आधार पर मुझे असली और सच्चे गुरु का पता लग गया। वह गुरु मालिक सर्वाधार निजस्वरूप, अकह, अपार अगाध और अनाम है। हर समय उसके पास रहता हूँ मगर भ्रम में आकर नीचे आ गया। कोई समय था कि नीचे से ऊपर जाने में कष्ट होता था। और आज ऊपर से नीचे आने में कष्ट होता है। समय बदल गया। मेरा जीवन बदल गया।

आज का शब्द था—'आस कर गुरु की.....।

अब दातादयाल तो यहां हैं नहीं मगर असली दाता तो है। इसलिये उत्साहित हो गया कि फकीरचन्द ! तुम गलती पर नहीं हो। तुमको इस अवस्था में आना ही था और यह अवस्था अच्छी है।

वह सच्चा गुरु मुझ से न कभी अलग था और न अलग है। वह मेरा अपना ही स्वरूप था। मैं ही भ्रम में आया हुआ था।

जग के फंदों में पड़ा, समझा नहीं उपदेश को।
तज के पृथ्वी को चढ़ा, प्यारे अकाश न तू कभी ।।

'जग के फन्दे' एक तो वाह्य जगत है और एक जगत वह है जो मेरे मन में संकल्प विकल्प उठते हैं। इनमें सब कुछ ही आ जाता है। आज नीचे आकर साधन करने का ख्याल भी मुझे रेडियो का समाचार सुन कर आया। आजकल कई प्रकार के झगड़े पड़े हुये हैं। इन समाचारों को सुनकर मुझे नीचे आकर प्रश्नोत्तर करने का विचार उत्पन्न हुआ। यह भी तो जग के ही फंदे हैं। यह माया देश है। इसमें कुछ भी होता रहे। इसमें मृत्यु भी है, विनाश भी है, भूचाल, बीमारी शोक और आनन्द भी है। रेडियो के समाचारों के संस्कारों के कारण यह विचार आया था कि आज नीचे आकर साधन में गुरु रूप से यह पूछूँ कि अब क्या होगा मगर इस साधन में परिक्वता नहीं

आई। कोई समय था जब मुझे नीचे साधन करने से उत्तर मिल जाता था। आज समय है कि नीचे आकर प्रश्न करने की कोशिश की मगर उत्तर नहीं मिला। उत्तर तो तब मिलता जब दाता का रूप प्रगट हो कर आता। वहाँ तो प्रकाश आता था। इसलिये मुझे उदासी आई।

माया छाया एक है, दोनों में सार की गम कहाँ।
यह समझ आजाय, होगा फिर उदास न तू कभी

इस प्रकार के विचार का मेरे अन्तर पैदा होना भी तो माया है। मैं ने माया छाया के विषय में पूछने की इच्छा की थी। याहा-खां कुछ कर रहा है। इन्द्रा कुछ कर रही है। दूसरे बड़े बड़े देश कुछ कर रहे हैं। तो इस ख्याल ने विवश किया कि पूछूं कि क्या होगा। चूँकि दाता का साकार रूप तो बनता नहीं था, प्रकाश और शब्द ही आजाता था इसलिये सोचा कि फकीर! क्या लेना है तुमने! जो मर्जी है होता रहे। जिसने मरना है वह मरेगा। जिसने जाना है वह अवश्य जायगा। बस इस विचार से शान्ति मिली।

कैसे अपने रूप की, आती समझ प्यारे तुझे।
आया वर्ष में पक्ष मास में, गुरु के पास न तू कभी॥

इसलिये जिन्दा गुरु की आवश्यकता है मगर मेरे लिये तो अब स्वामी जी कबीर और दाता दयाल की बाणी ही जीवित गुरु है। मुझे शान्ति मिल गई।

नाम से मिटते हैं संकट, नाम गुरु का मंत्र है।
नाम से काटा है माया जाल, फाँस न तू कभी॥

फिर वह नाम क्या है राधास्वामी नाम है? क्या वह राम नाम है? क्या वह पांच नाम है? वह तो है। —

नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूढें तिरलोकी माहीं॥

नाम तो है गुरु का स्वरूप। नाम मेरा अपना ही स्वरूप है जो

कि वास्तविक रूप से फकीर चन्द है। वही नाम है। और नाम क्या है मगर इस बात को दुनिया समझ नहीं सकती। जब सुमिरन ध्यान करते २ सुरत शब्द और प्रकाश में मिल जायगी उसको उसका अनुभव होगा। जब नाम की प्राप्ति होगी।

अब सं भल जा नाम में, विसराम आठों याम ले।
किया राधास्वामी नाम से, दुख का नास न तू कभी ॥

अब यह जानने की आवश्यकता नहीं रही कि देश में क्या होगा। जो होना है वह होकर रहेगा। जब से सृष्टि बनी है यह विनास और युद्ध होते ही रहे हैं। इन को किसी ने रोका नहीं। यह काल और मायाका चक्र है। चिन्ता करने की आवश्यकता क्या है। उसकी इच्छा सर्वोपरि है। आज का शब्द मेरे ही लिये निकला है। जैसे २ किसी ने कर्म किये हैं वह उसको भोगने पड़ते हैं। दुख और सुख कर्म का भोग है चिन्ता कैसी! दुनि या के दुखों को भूल जाओ। सब को शान्ति।

होली

होली खेलूं रंग भरी ॥
आलस नींद प्रमाद को त्यागूं, चित गुरु चरन धरी।
सुमिरन ध्यान भजन घट भीतर, तन मन सुधि बिसरी ॥
जग चिन्ता की धूल उड़ाई, माया देख मरी।
प्रेम गुलाल मला जब मुख पर, काल की गति बिगरी ॥
अनहद धुन का हुआ दीवाना, मोह की विपति हरी।
थिक थिक थिक थिक, थई थई थई थई नाचे सुरति परी ॥
मेरी होली है सबसे न्यारी, सच्ची सहज खरी।
कोई कोई जाने साध सुजाना, धुनि जेहि कान परी ॥
राधास्वामी संग यह फाग रचाया, माया संग लरी।
सुरत निरत अस कुल परिवारा, भव के सिंध तरी ॥

प्रवचन

परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानव तामन्दिर होशियारपुर १२-१२-७१)

गुरुभाई श्री हरनाम सिंह जी के पत्र का उत्तर

गुरु कहें जगत सब अंधा । कोई गहे न घट का संधा ॥(१) शब्द
बाहरमुख भरमे सारे। अन्तर मुख शब्द न धारे ।
मन जगत भोग रस बंधा । नित करे कर्म वश धंधा ॥
फंस मरे काल के फंदा । अब हुआ जीव अति गंदा ॥
गुरु कहें नित्त समझाई । कर खोज शब्द घट जाई ॥
यह सुने न गुरु के बैना । कस खुलें हिये के नैना ॥
बिरला कोई जीव अधिकारी । गुरु बचन करे आधारी ॥
जो बचन संभारे गुरु के । मन फंद लगावे छल के ॥
ज्यों त्यों कर जीव भुलावे । काल अपने खेल खिलावे ॥
गुरु भक्ति न करने पावे । बहु भाँति उपाधि लगावे ॥
कभी मित्र होय भरमावे । कभी वैरी बन धमकावे ॥
कभी रोगन मांहि झुमावे । नाना विधि जाल विछावे ॥
शब्दा रस लेन न पावे । यों जीव सदा दुख पावे ॥
गुरु महर करें जिस जन पर । सो बचे शब्द धुन सुनकर ॥
तब गहे शब्द रस जाँची । फिर जले न जग की आँची
सब बात लगी अब काँची । गुरु भक्ति मिली अब साँची ॥
राधास्वामी की लीनी शरनी । सो जीव लगे भव तरनी ॥

कल मेरे गुरु भाई हरनाम सिंह मोघा वालों का खत आया । यह मेरे खत के उत्तर में था । पहिले जो मैं ने उन को उनके एक खत का उत्तर दिया था वह मनुष्य बनो को प्रकाशित करने के लिये भेज दिया है । यह उनका दूसरा खत है । उसमें वह लिखते हैं कि

आपका कहना है कि मैं गिरता रहता हूँ और आपने लिखा है कि सहस दल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न में साधन करना गिरना है।

मैं उनका ध्यान स्वामी जी महाराज के इस शब्द की ओर दिलाना चाहता हूं। वह कहते हैं कि कोई आदमी अपने अन्तर की स्थिति को नहीं जानता और जगत के फंदों में फसा हुआ है। एक तो जगत का फंदा अर्थात् हमारे घर का और संसारिक व्यवहार है। दूसरे मन के अन्तर जितने विचार भाव चाहे वह किसी प्रकार के हैं एक यह फंदा है। दाता दयाल जी ने मुझ पर बड़ा अहसान किया है कि फंदे का पता लग गया मगर इस फंदे से निकला नहीं जाता। यही बात मैं ने उनको लिखी थी कि मैं गिरता रहता हूँ। यही स्वामी जी कहते हैं :=

बाहर मुख भरमे सारे। अन्तर मुख शब्द न धारे ॥

बाहरमुखी सब भरमते हैं। अन्तर के शब्द को कोई नहीं पकड़ता। मैं अपने भाई से पूछता हूँ कि जब आप साधन में जाते हैं तो क्या उस समय अन्तर में बातें नहीं होती। प्रश्नोत्तर नहीं करते ? क्या केवल शब्द में ही रहते हो ? यदि आपकी ऐसी दशा है तो मैं आपको गुरु का रूप मानकर नमस्कार करता हूँ। मेरी अपनी यह स्थिति है कि मैं सब कुछ समझ गया कि सिवाय शब्द के और जो कुछ अन्तर में पैदा होता है चाहे गुरु स्वरूप के साथ बातें होती हों, चाहे किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना हो या किसी प्रकार का अनुभव पैदा हो, यह सब माया है। है नहीं मगर भासता है। इसलिये मैं ने उन को लिखा था कि यह सब माया है। अब स्वामी जी कहते हैं:—

मन जगत भोग वश बंधा। नित करे कर्म वश धंधा ॥

क्या यह झूठ है। मैं ने मन्दिर बनवाया। किसी ने डेरा बनाया। किसी ने धाम बनाई। यह क्या हैं ? हर एक आदमी के अपने २ पिछले कर्मो के संस्कार हैं। मंदिर, मसजिद या धाम बनाना और

पोलीटीकल और सोशल काम करना भी हर जीव के अपने अपने प्रालब्ध कर्मों के अनुसार उसका अपना कर्म भोग है और अपने कर्म को भोगने के लिये मनुष्य विवश है। जब तक जीव को यह निश्चय नहीं हो जाता कि यह सब काल और माया है तब तक वह अपने इस चक्र से बच नहीं सकता। भोग तो सब को भोगना पड़ता है। कोई अकर्मक होकर काम करता है कोई सकर्मक होकर काम करता है।

मित्रो ! मैं ने जो किया यह मेरे पिछले कर्मों का भोग है। मुझे खुशी है कि मैं निस्स्वार्थ, निष्कपट और निष्काम रहने की कोशिश करता हूँ इसीलिये उस सच्चे सतगुरु से प्रार्थना करता रहता हूं, जो शब्द स्वरूप है कि मुझ को अपनी शरण प्रदान करे।

फंस मरे काल के फंदा। अब हुआ जीव अति गंदा ॥

क्या अपने मन के अन्तर की परमार्थिक वासनायें या संसारिक वासनायें काल के चक्र में नहीं हैं ? कोई सांसारिक कार्यों में संघर्ष करता रहा और कोई मेरी तरह मन में ज्ञान ध्यान और विवेक के चक्र में संघर्ष करता रहा। मैं अब महसूस करता हूँ कि मैं ने इतनी रिसर्च की है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मुझे यह रिसर्च क्या सिद्ध हुई ? मन के खेल। इसलिये मैं महसूस करता हूँ कि मेरे कर्म अभी तक समाप्त नहीं हुये।

गुरु कहें नित्त समझाई। कर खोज शब्द घर जाई ॥

संतों का मार्ग 'नाम' प्राप्ति का मार्ग है। सभी सच्चे संत और सच्चे गुरु सुरत को अपने आदि धरको जाने का का उपदेश करते हैं और इसके लिये शब्द का का साधन बताते हैं। वह भी सतनाम का. निज नाम का। यह जितने दूसरे शब्द हैं अर्थात् सहस्रार, ओंकार, रारंकार और सोहंकार यह सब माया और काल के शब्द हैं। इनका मुझे काफी अनुभव हुआ जिसको मैंने अक्टूबर सन् १९६२ के मनुष्य बनो' में और 'पांच नाम की व्याख्या' नामी पुस्तक में

व्याख्या के साथ वर्णन किया है।

यह सुनें न गुरु के बैना। कस खुलें हिये के नैना॥

स्वामी जी कहते हैं कि यह लोग गुरु की बात को नहीं समझते। मेरे प्यारे भाई साहब हरनाम सिंह जी ने मुझे लिखा है कि संत सब स्थानों का उपदेश देते हैं और आप इन सब को काल माया समझते हैं।

हो सकता हैं कि मैं गलती पर हूँ मगर इस बाणी का अर्थ और व्याख्या जो मैं करता हूँ यह मेरा अनुभव है। दाता दयाल जी ने मुझे शिक्षा के बदलने की आज्ञा दी थी और मैं ने उसे बदल दिया कि निचले शब्दों के झगड़े में पड़ने की अधिक आवश्यकता नहीं हैं। केवल सार शब्द को पकड़ो मगर यह पकड़ा नहीं जाता। यह काल स्वरूपी मन बड़ा बलवान है और चौदह लोक में बसता है। यह सुरत को अपने चक्र से निकलने नहीं देता। इसीलिये मैंने अपने पत्र में लिखा था कि मैं गिरता रहता हूं। सहसदल कंवल, त्रिकुटी सुन्न, महासुन्न और सोहंकार में अभ्यास करना इस आयु में मैं इसको गिरावट समझता हूँ।

विरला कोई जीव अधिकारी। गुरु बचन करे आधारी॥

कोई बरला ही अधिकारी होता है जो गुरु के बचन को मानता हैं। गुरु का बचन है नाम और वह नाम है चौथे पद का। असली नाम यह सहसदल कमल नहीं है, न त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न में है। वह तो सतलोक में है।

नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूंढें त्रिलोकी माहीं॥

जो बचन सम्हारे गुरु के। मन फंद लगावे छल के॥

तभी तो मैं ने लिखा था कि मैं गिरता रहता रहता हूँ। जानता और समझता हुआ भी गिरता रहता हूँ। भाई हरनाम सिंह जी ने लिखा है कि यह गिरना नहीं है। आप कैसे कहते हैं कि यह आप गिरते रहते हैं।

ज्यों त्यों कर के जीव भुलावे। काल अपने खेल खिलावे ॥

देखो ! स्वामी जी ने कितनी स्पष्टता से काम लिया है। अपने आदि घर जाने के लिये अथवा उस अवस्था में लय होने के लिये सिवाय उस नाम के और कोई साधन नहीं हैं। न ध्यान न ज्ञान न विज्ञान। यह सब नीचे की अवस्थायें हैं। मन इन में आनन्द लेता हुआ यह समझता है कि यही इष्ट पद है।

गुरु भक्ति न करने पावे। बहु भांति उपाधि लगावे ॥

अब गुरु भक्ति क्या है ? क्या बाहर के गुरु की सेवा ही गुरु भक्ति है ? इस बाहरी गुरु भक्ति से मनानन्द मिलेगा मगर अपने घर नहीं जा सकोगे। बाह्य पूर्ण पुरुष का सत्संग करके भेद को समझ कर अपने अन्तर असली और सच्चे शब्द स्वरूपी गुरु से मिलना और उस से प्रेम करना असली और सच्ची गुरु भक्ति है।

कभी मित्र होय भरभावे। कभी वैरी बन धमकावे ॥

यह मन की दशायें हैं। कभी आनन्द मय हो जाता है और कभी गिर जाता हैं। मुझ पर तो दाता ने दया कर दी। केवल इस एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता और वह रूप जो लोगों की सहायता करता है वह या तो जीवों का अपना विश्वास है या हो सकता है कि मेरी रेडीयेशन उनकी सहायता करती हो। इस गुरु पदवी ने मेरी अन्तर की आंख खोलदी और उस से जिस परिणाम पर पहुँचा, मैं ने समझा कि मैं गिरता रहता हूँ क्योंकि इस मन ने मुझे भी बड़ी ऋद्धि सिद्धि, ज्ञान और विवेक के दृश्य दिखाये और गिराया भी ऐसा कि मुझे विचारों पर लज्जित होना पड़ा।

भाई हरनाम सिंह ! मैं ऊंचा चला गया। आम जनता को ले जाने के लिये आप का और दूसरे संतों का मार्ग ठीक है मगर यह सचाई नहीं है। तभी तो मैं ने आप को कहा और भाई पीरे मुर्गा को कहता हूँ कि मानवता मन्दिर में आओ, रहो और जीवों के कल्याण के लिये काम करो। मैं तो अपना कल्याण

करने को आया था । कोशिश कर रहा हूँ कि हमेशा के लिये इस चक्र से निकल जाऊँ । यह उस दाता के हाथ में है कि निकाले या न निकाले । यह मेरे बस में नहीं है । चूंकि दाता दयाल ने काम करने की आज्ञा दी थी इसलिये मैं करता हूँ । इससे मेरा अपना कल्याण हुआ । अब आप आइये, अपना भी कल्याण कीजिये और जीवों को भी साथ लगाइये ।

कभी रोगन माहिं झुमावै ।
नाना विधि जाल बिछावै ॥

मुझे इस मन के चक्र का ज्ञान होगया मगर अभी निकल नहीं सकता और गिरता रहता हूँ लेकिन सँभल जाता हूं ।

शब्द रस लेन न पावै । यों जीव सदा दुख पावे ।

मेरी समझ में अपने आदि घर अर्थात शब्द ब्रह्म से निकल कर नीचे आना ही गिरावट है ।

गुरु महर करें जिस जन पर, सो बचें शब्द धुन सुनकर ।

बाहर के गुरु दाता दयाल ने मुझ पर महर करदी । अनुभव ज्ञान होगया । भेद का पता लग गया । अब असली सतगुरु जो शब्द स्वरूपी है और पारब्रह्म है उसकी महर का इन्तजार करता रहता हूँ ।

तब गहे शब्द रस जांची । फिर जलें न जग की आंची ॥

जब तक सुरत चारों ओर से पूर्णतया उदास होकर अन्तर में नाम को नहीं पकड़ती तब तक गिरावट और दुख सुख का झगड़ा समाप्त नहीं होता ।

सब बात लगी अब कांची । गुरु भक्ति मिली अब सांची ।
राधास्वामी की लीनी शरनी । सो जीव लगे अब तरनी ॥

भाई हरनामसिंह ! अपने अन्तर में जो सार शब्द है जो शब्द अभेद है या विदेह है यह सच्ची बात है । मेरे हक में दुआ कर कि मेरी सुरत अब इस संसार में न आवे । जिन जिन लोगों ने इस

सार समझ, सार ज्ञान और सार भेद को किसी वाह्य शब्द अभ्यासी गुरु के चरणों में बैठ कर समझा है वही पार उतर सकते हैं।

नोट —प्यारे पूज्य हरनाम सिंह ! मैं जानता हूँ कि मैं बहुत ऊँचा बोलता हूँ। आप लोगों को तो क्या बड़े २ संत महात्माओं को भी, इस अन्तिम अवस्था का जो स्वामी जी या संत कबीर ने कही है जो वास्तव में है, इसका ख्याल नहीं जासकता। यह जानते हुये मैंने इस रहस्य को वर्णन किया है कि इस धार्मिक दुनियां में गलत समझ के कारण मानव जाति को सामाजिक, घरेलू और आत्मिक दृष्टि से भिन्न भिन्न सम्प्रदायों, धर्मों और जातियों में बट गई है। इस का परिणाम यह है कि संसार में अशान्ति है और झगड़े हैं। इस ख्याल से अब जो समय आरहा है, इस में तबाही, झगड़े फ़िसाद बहुत होरहे हैं और होंगे। शायद इस हानि को सहने के बाद देश के समझदार लोग जो इन आपत्तियों से बचना चाहते हैं या दुनिया को बचाना चाहते हैं उनको चेत हो और वह धार्मिक रूप से केवल एक शब्द स्वरूपी गुरु या एक अकाल पुरुष या एक राधास्वामी को मानते हुए इस सृष्टि में जो माया और काल की है, 'शिव संकल्प जो वेद मार्ग है, रखते हुये 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को मानें। हो सकता है कि जो कुछ मैंने समझा है यह सब गलत हो। मुझे कोई अफसोस नहीं है। जो अनुभव किया वह कहा। कलियुग में संतों का राज होगा। ज्ञान और अनुभव का नाम संत गति है। जब तक संसार में यह सच्चा अनुभव और सच्चा ज्ञान नहीं आता इस काल और माया के चक्र के दुखों से कोई बच नहीं सकता।

अपने बारे में वह लिखते हैं कि मेरा जीवन साधारण था। धार्मिक नहीं थीं। लगभग ४।। साल हुये मेरे अन्तर डिवाइन लाइट (दिव्य ज्योति) प्रगट हुई। उसने मुझको यह उपरोक्त शब्द कहे और भगवान की ओर से मुझे यह सन्देश मिला कि सन् १९७५ तक गंदा तत्व सब समाप्त हो जायगा। कलियुग का समय चला जायगा और सतयुग आजायेगा।"

श्री साहनी ने मुझे कहा कि आप इस पर प्रकाश डालिये। मैं साहनी साहब को कहना चाहता हूं कि इसका उत्तर तुम्हारे पास है।

साहनी साहब फौज में नौकर थे। न मैं इनको जानता हूं और न यह मुझे जानते हैं। इनको फौज में प्लूरिसी होगई। अस्पताल में भर्ती हुए। दुखी थे। इनके अन्तर मेरा रूप प्रगट हुआ और कहा कि चिन्ता मत करो, तुम ठीक हो जाओगे। तुम्हारी यह नौकरी भी रहेगी। तुमको डाकखाने में नौकरी मिल जायगी।

अब इन महात्मा पूर्णचन्द्र ने तो संसार को कह दिया कि मेरे अन्तर में डिवाइन लाइट (दिव्य ज्योति) प्रगट हुई मगर मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि श्री साहनी के अन्तर मैं नहीं गया। वह प्रगट होने वाला कौन था ? जब मनुष्य का मन निर्मल होता है और उसके अन्तर किसी वस्तु की प्रबल इच्छा होती है तो उसके मनकी पवित्रता या सचाई और दीनता के कारण भविष्य में होने वाली बात का उसको ज्ञान हो जाता है। उसको कहने या बताने वाली शक्ति बाहर से नहीं आती किन्तु उसके अपने ही आत्मा की आवाज होती है।

दाता दयालजी ने ऊपर के शब्द में कहा है कि मैं ज्ञान बताने आया हूँ। जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ मैं भी उसको कहने का अधिकार रखता हूँ। इन महात्मा पूर्णचन्द्र ने एक आश्रम बनाया हुआ है। वहाँ एक म्यूजियम रक्खा हुआ है। लोग उसके पास आते

हैं और उसका सम्मान करते हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर संसार को कहता हूं कि जो कुछ इस महात्मा ने कहा यह अज्ञान है। असलियत यह है कि जब कभी आदमी का मन निर्मल होता है तो अन्तर से जो आवाज आती है वह वाह्य शक्ति की आवाज नहीं है वह उसके अपने ही आत्मा की आवाज है।

मेरे पास नित्यप्रति इस तरह की अनेकों चिट्ठियां आती हैं। वह लिखते हैं कि बाबाजी आपका रूप हमारे अन्दर प्रगट हुआ और यह कहा उनको कहता हूँ कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता और न मुझे इन बातों की कोई जानकारी होती है। कल ही एक आदमी मुजफ्फर नगर (उ०प्र०) से आया हुआ था। उसका बाप दातादयालजी का सत्संगी था। उस आदमी ने बताया कि २० अक्टूबर १९७१ को उसके यहां लड़का पैदा हुआ है। वह कहता है कि जब मेरी स्त्री को पांच महीने का गर्भ था तो एक रात को आप मेरे अन्तर प्रगट हुये और कहा कि अमुख तारीख को तेरे यहाँ लड़का पैदा होगा। उसका नाम 'मनुष्यवीर' रखना।

अब २० अक्टूबर को उसके घर में लड़का पैदा हुआ और उसने उसका नाम 'मनुष्य वीर' रक्खा। इस अज्ञान के कारण वह मेरे पीछे फिरता है मगर मुझको इसकी कोई जानकारी नहीं है।

दाता दयाल जी ने कहा है कि मैं ज्ञान बताने आया हूँ तो मैं भी तो ज्ञान बताने ही आया हूँ। जब गुरु और चेला एक हो जाते हैं तो गुरु का सार चेले में आजाता है।

अब रह गया सवाल कि क्या सचमुच दुनियां में अवगुण या बुराई समाप्त हो जायगी और १९७५ ई० में सतयुग आजायगा। ऐसे ही एक सरदार पूरनसिंह हैं जो अपने आपको निष्कलंक कहता है। उस पर मैंने एक 'निष्कलंक अवतार' नामी पुस्तक लिखी है।

ऐ संसार वालो! तुम भूल भ्रम में हो। यह माया देश है। संसार में भलाई बुराई दोनों ही रहते हैं। कभी भलाई कम और

बुराई अधिक और कभी बदी कम और नेकी अधिक। बुराई का बिल्कुल ही नाश हो जाना मेरे अनुभव में बहुत कठिन है। बड़े बड़े संन्त महात्मा जो अपने को साक्षात सचाई समझते थे, इस संसार में आये। वह भी भूल भ्रम में रहे। संसार में भलाई बुराई नेकी बदी, धर्म कर्म, जीवन और मृत्यु, पाप और पुन्य हमेशा रहते हैं।

मैं यह भी जानता हूँ कि यहां न कोई नेकी है न बदी है। यह है ज्ञान मगर नीचे आकर कहना पड़ता है कि नेकी और बदी होती हैं। इसका मूल कारण अज्ञान और स्वार्थ है। इस समय की बुराइयां पहिले तो गृहस्थियों की हैं। उनके काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के भाव हैं। यह कभी नष्ट नहीं होते हैं और न कोई उनको मार सकता है। उनका यथा योग्य व्यवहार करना पड़ता है। हम गृहस्थी लोग उनको काबू न करके बुराइयों की ओर जाते हैं। और पोलीटिकल लाइन वाले झूठे मान और झूठे यश की ओर जाते हैं।

यदि कोई यह कहे कि याहांखां को बदनाम करो और भारत को यश (credit) दो तो मैं नहीं मानता। यह सब अपने कर्मों का फल है। सबसे अधिक पाप उन महात्माओं ने किया है जो असलियत को न जानकर अपने झूठे सम्मान के लिये लोगों को गलत शिक्षा देते हैं और अपनी पूजा करवाते हैं।

अब मैं श्री साहनी को कहना चाहता हुँ कि जब मिलटरी की नौकरी से आगये और डाकखाने में नौकरी करने लगे तब आप मेरे पास आये थे। इससे पहिले तो मैं आपको नहीं जानता था। आपने आकर मुझे बताया कि मेरा रूप आपके अन्तर प्रगट हुआ और यह बात कही मगर मुझे कोई इल्म नहीं था। इसलिये मैंने आपको सिद्ध कर दिया कि महात्मा पूर्णचन्द के अन्तर बाहर से कोई डिवाइन लाइट (दिव्य ज्योति) नहीं आई।

सब से अधिक बुराई इस संसार में इन महात्माओं ने की है। हुजूर दाता दयाल या मैं किसलिये प्रगट हुये। मैंने अपने आपको सन्त सतगुरु वक्त कहा है और सतज्ञान दाता कहा है। अतः संसार को सतज्ञान दिये जारहा हूँ।

उस महात्मा के अन्दर भी बाहर से कोई डिवाइन लाइट (दिव्य जोति) नहीं आई। यह उसके पिछले जन्म के शुभ कर्म उदय हुये हैं। वह शक्ति जो उसके अन्तर प्रगट हुई वह हर एक मनुष्य के अन्दर मौजूद है। मनुष्य के अन्तर प्रकृतिकी दिव्य शक्तियाँ रहती हैं। जब मनुष्य एकाग्रचित हो जाता है तो उसके अन्तर वह शक्तियां फुरती हैं। जब मन शुद्ध हो जाता है और आदमी अभ्यासी होता है तो उसकी शुद्धता फैलती है यदि मन गन्दा है सो उसमें अशुद्धता आजाती है।

ऐ साहनी ! तुम्हारी आँखें बताती हैं कि तुम अभ्यास करते हो। मैं बहैसियत सन्त तुमको हिदायत करना चाहता हूँ कि तुम्हारे मन में जैसे विचार होंगे अभ्यास करने से वह फुरेंगे। यदि तुम्हारे मन में ईश्वर भक्ति का ख्याल है तो वह बढ़ जायगी और यदि किसी से घृणा द्वेष और टीका टिप्पणी है तो वह बढ़ेंगे। यह मेरा सत ज्ञान है। यही कारण है कि मैं किसी को नाम नहीं देता। अभ्यास करने से मन के जो विचार या वासनायें होती हैं वह ४-६-१० गुना बढ़ जाती हैं इसलिये जब तक मनुष्य के मन में दया और दीनता का भाव नहीं है वह लाख अभ्यासी क्यों न हो उसके जीवन का परिणाम कभी अच्छा नहीं होगा।

यह जो आवाजें महात्मा लोग बताते हैं, मैंने ऐसे कई व्यक्तियों के बारे में समाचार पत्रों में पढ़ा है कि उन्होंने अपनी इस अन्तरीय अवाज के प्रभाव में आंकर अपने सिर काट कर देवी पर चढ़ाये।

जिस महात्मा पूर्ण चन्द्र ने यह लिखा है, यद्यपि मैंने उनको देखा नहीं और न उनके बारे में कुछ जानता हूँ, कलियुग का जाना या

सतयुग का आना यह विचार पहिले ही से उसके दिमाग पर पड़े हुये थे। इसलिये उसके अन्तर यह विचार उत्पन्न हुआ।

मैं आया हूँ ज्ञान बताने, ज्ञान महा है सुखदाई।

यह ज्ञान जो मैं देरहा हूँ यदि कोई आदमी इस पर आरुढ़ हो जाय तो उसके मन की सम्पूर्ण हिलोरें और भाव समाप्त हो जायेंगे और इस भाव से जो इस के कर्म बने हैं या बनेंगे वह उनके प्रभाव से बच जायगा। ज्ञान की भक्ति से कर्म दग्ध हो जाते हैं। साहनी साहब ! तुमको समझाने की मैंने पूरी कोशिश की है। तुम्हारे ही जीवन का लक्ष तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है। तुम्हारा बटुआ गुम होगया था। तुमने कहा कि तुम्हारे अन्तर से आवाज आई। तुमने समझा कि यह बाबा ने तुमको कहा है कि लेकिन मैंने तुमको बताया था कि मैं तुम्हारे अन्दर नहीं गया। वह आवाज तुम्हारे अपने आत्मा की आवाज है इसलिये सत्संगियों को सब से पहिले सत्संग करके अपने अन्तर क्षमा, परोपकार, प्रेम और हमदर्दी के विचार उत्पन्न करने चाहिये अन्यथा बुरे विचार रख कर साधन करने से उनकी बड़ी हानि होगी। यह है सत ज्ञान जिसको दाता दयाल जी ने बाणियों द्वारा प्रगट किया और मैंने उसे बिल्कुल साफ शब्दों में वर्णन किया है।

ज्ञान सहज है सहजका साधन, सहज में नहिं कठिनाई।

मैंने इस को बहुत सहज कर दिया है। समुद्र को कूजे में बन्द कर दिया है। ज्ञान बिल्कुल ही सहज है बशर्ते कोई सत्संग करके बात को समझे। सत्संग करना ही गुरु सेवा है।

दर्शन करे बचन पुनि सुने।
सुन सुन कर नित मन में गुने॥
गुन गुन काढ़ि लेय तिस सारा।
काढ़ि सार तिस करे अहारा॥ क्रमशः

Printed by S.C. Mital at Dayal Printing Press.
Lekh Raj Nager Aligarh. Published by D. C. mital